Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 2 | (April – June 2026)

संत काव्यधारा में 'विपश्यना'

डॉ. ममता ध्यानी
सहायक प्राध्यापक, हिंदी, रा. च. उ. रा. स्ना. महाविद्यालय, उत्तरकाशी

सारांश

हिंदी साहित्य में मुख्य रूप से भक्तिकाल की निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा को संत काव्यधारा की संज्ञा दी जाती है। इसके अंतर्गत संतों की एक लंबी परंपरा है, जो भक्तिकाल से लेकर मध्ययुग उत्तरार्ध तक दिखाई देती है। 'विपश्यना' (संस्कृत) या 'विपस्सना' (पालि) सिद्धार्थ गौतम जो बाद में बुद्ध हुए के द्वारा अविष्कृत ध्यान की एक शुद्ध वैज्ञानिक पद्धति है, जिसके द्वारा उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया। इसका अर्थ है विशेष प्रकार से देखना (वि+पश्य+ना)। भारत की यह प्राचीन विद्या बुद्ध के बाद एक लंबे समय तक भारत में रही और फिर अपने शुद्ध रूप में लुप्त हो गई। कुछ अन्य पड़ोसी देशों में बहुत कम लोगों ने गुरु शिष्य परंपरा के द्वारा इस विद्या को इसके शुद्धतम रूप में जीवित रखा। भारत में 70 के दशक में श्री सत्यनारायण गोयनका (पद्मभूषण) द्वारा इस साधना पद्धति को पुनः स्थापित किया गया। आज अपने व्यावहारिक रूप में भारत और विश्व के अन्य देशों में इस साधना पद्धति को सैकड़ों केंद्रों में सिखाया जाता है। संत काव्यधारा के संतों ने अनुभूति पक्ष पर विशेष बल दिया है, जो विपश्यना विद्या का मूल है और गहराई से देखने पर इस काव्या-धरा के संतों की वाणी में सर्वत्र विपश्यना दिखाई देती है।

बीज शब्दः बुद्ध, विपश्यना, संत काव्यधारा, अनुभूति पक्ष, साक्षी भाव, प्रयोगात्मक पक्ष, अनित्य बोध, संस्कार मुक्ति, भगवान, बंधुत्त्व।

विपश्यनाः संक्षिप्त परिचय

विपश्यना भारत की एक प्राचीन साधना विधि है, जिसे सिद्धार्थ गौतम द्वारा पुनः आविष्कृत किया गया। इसी साधना के द्वारा सिद्धार्थ गौतम 'बुद्ध' हुए और संपूर्ण विश्व में करुणा और मैत्री का संदेश फैलाया। बोधि प्राप्त करने के बाद बुद्ध के शब्द थे-

पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि,

पहले कभी न सुने गए धर्मों में धर्म-चक्षु उत्पन्न हो गया,

ञाणं उदपादि – ज्ञान उत्पन्न हो गया,

पञ्ञा उदपादि – प्रज्ञा उत्पन्न हो गयी,

विज्जा उदपादि – विद्या उत्पन्न हो गयी,

आलोको उदपादि – आलोक उत्पन्न हो गया।

(सं० नि० ३.५.१०८१, धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त) [1]

यही 'धर्म-चक्षु' विपश्यना है; अनुभव पर आधारित यथाभूत सत्य। इस साधना में हर पग पर केवल अनुभूत सत्य को ही महत्त्व दिया जाता है, यथाकृत, यथाकल्पित, यथावांछित या यथाआरोपित को नहीं।

उदाहरण के लिए हमारा भौतिक शरीर जो प्रत्यक्ष रूप से ठोस प्रतीत होता है क्वांटम भौतिकी के आधार पर देखें तो यह केवल तरंगों का पुंज है। न केवल हमारा शरीर, बल्कि संपूर्ण जगत ही तरंग है। जिन सूक्ष्म कणों से यह जगत बना है, उन्हें भगवान बुद्ध ने कलाप कहा। कलाप अर्थात भौतिक जगत की सूक्ष्मतम इकाई। कलापों के समूह में सतत प्रज्ज्वलन और प्रकंपन होता रहता है। परिवर्तन के इस सतत नियम को जानकर ही बुद्ध कहते हैं- सब्बो पज्जिलतो लोको, सब्बे लोको पकम्पितो। (सं० नि० १.१.१६८, उपचालसुत्तम)[2]

यह कोई दार्शनिक मान्यता नहीं अपितु शाश्वत वैज्ञानिक सत्य है, जिस पर चलते हुए हर विपश्यना का साधक इसे प्रत्यक्ष अनुभव करने लगता है। इसी प्रत्यक्ष अनुभव ने इस साधना मार्ग पर चलते हुए कितने ही मनुष्यों को दु:खों से मुक्त किया। इन्हीं प्रत्यक्ष अनुभवों को समय-समय पर संतों ने अपनी वाणी में उतारा है।

संत काव्य में विपश्यना :

जिन्होंने सत्य के मार्ग पर चलते हुये ज्ञान को प्राप्त किया वे ही संत कहलाए। संत काव्यधारा संतों की एक लंबी परंपरा है, जो लगभग संवत 1200 से प्रारम्भ होकर संवत 1850 तक दिखाई देती है। संत जयदेव को इस परंपरा का अग्रणी संत माना जाता है। कबीर, रैदास, नामदेव, गुरुनानक, शेख फरीद, बाबा बुल्लेशाह जैसे सैकड़ों संत इस महान परंपरा के अंतर्गत आते हैं। इन संतों के काव्य का मूल्यांकन केवल साहित्यिक मानदंडों पर नहीं किया जा सकता। इसे आचार्य परशुराम चतुर्वेदी अपनी पुस्तक 'संत काव्य' (संग्रह) की प्रस्तावना में स्पष्ट करते हैं- "वास्तव में संत लोग ना तो साहित्यिक थे ना उनकी रचनाओं को साहित्य शास्त्रीय मानदंड के अनुसार परखना ही उचित है।"[3]

आचार्य चतुर्वेदी के इस कथन से एक प्रश्न स्वत: ही खड़ा होता है कि साहित्यिक मूल्यांकन के अतिरिक्त संत कवियों का अध्ययन और किस आधार पर हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में यदि हम इसके प्रयोगात्मक पक्ष को देखें तो एक साहित्यिक अंतराल मिलता है । अधिकांश संत साहित्य के अध्ययन- अध्यापन में साहित्यिक व्याख्याएं इसके प्रयोगात्मक पक्ष पर मौन दिखाई देती हैं, जबकि इसके उलट संत कवियों ने केवल अनुभूति पक्ष पर ही विशेष बल दिया है। इन कवियों में विपश्यना के मूल तत्त्वों को विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है। इन रूपों पर विचार करने से पूर्व यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि बुद्ध की शिक्षा भले ही परिवर्तित रूपों में ही सही इस धारा के कवियों को परंपरा से किसी न किसी रूप में प्राप्त होती आई थी।

आचार्य चतुर्वेदी के संत परंपरा के प्रथम युग का आरंभ संत जयदेव से मानते हैं। वे लिखते हैं "संत जयदेव के समय तक महायानी बौद्ध धर्म के वज्रयान, कालचक्रयान एवं सहजयान जैसे संप्रदायों का आरंभ हो चुका था और कम से कम पूर्वी भारत में उनकी अनेक विशिष्ट बातों का समावेश क्रमश: स्थानीय वैष्णव धर्म में होता जा रहा था।"[4] इस काव्यधारा के सबसे महत्त्वपूर्ण संत कबीर के काव्य में नाथपंथ का पूर्ववर्ती प्रभाव तो द्रष्टव्य है ही। इस प्रकार कोई संदेह नहीं रह जाता कि बुद्ध की विद्या और शिक्षाएं किसी न किसी रूप में इन संतों को परंपरा से प्राप्त हुई ही थी। संत काव्यधारा में विपश्यना के तत्त्वों को जानने के लिए इसके मूल तत्त्वों की उपस्थिती को इस काव्यधारा में देखा जा सकता है।

विपश्यना वह विद्या है, जिससे सिद्धार्थ गौतम बुद्ध हुए और हजारों लोगों के लिए दुखों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया बुद्ध शब्द का अर्थ है. "एक व्यक्ति, कोई भी व्यक्ति जो अपने अज्ञान से पूरी तरह जागने के बाद, प्रज्ञा की महान

संभावना के लिए मुक्त होता है, वही बुद्ध है। वही बुद्ध है जिसने अपनी पीड़ाओं व कुंठाओं का अंत कर दिया और अंतहीन व अमर प्रसन्नता व शांति को पा लिया... बुद्ध प्रकृति प्रत्येक जीवित प्राणी का जन्मसिद्ध अधिकार है।"[5]

व्यक्ति अपनी इसी सहज प्रवृत्ति से दूर होकर दुखी होता है। भगवान बुद्ध ने इसी दु:ख से मुक्ति पाई और संपूर्ण विश्व को दु:ख निवारण का उपाय बताया। उन्होंने चार आर्य सत्य कहे –

1. "इदं दुक्खं अरियसच्चं – यह दुःख आर्यसत्य है।
2. इदं दुक्खसमुदयं अरियसच्चं - यह दुःख समुदय आर्यसत्य है।
3. इदं दुक्खनिरोधं अरियसच्चं – यह दुःख निरोध आर्यसत्य है।
4. इदं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं- यह दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य है।"[6]

इसी चौथे आर्य सत्य को जो व्यावहारिक जीवन में असंभव जान पड़ता है, संभव बनाने का प्रयोगात्मक मार्ग विपश्यना है, जो परंपरा के सहज विकास के रूप में संत कवियों को प्राप्त हुई।

इस साधना की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह मुक्ति के लिए बाहरी किसी आलंबन पर आश्रित ना होकर शरीर के माध्यम से आत्म साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करती है ।ध्यातव्य है कि संत काव्य-धारा के अनेक कवियों ने अपनी अपनी तरह से इस बात को स्पष्ट किया है कि "ब्रह्म, परमात्मा, राम या परमतत्व को हम इसी काया के भीतर पा सकते हैं। बुद्ध जिसे 'कायानुपश्यना' कहते हैं उसे ही इन संतों ने अपने-अपने ढंग से स्पष्ट किया है। कबीर कहते हैं- तीनि हाथ एक अरधाई ,ऐसा अंबर चीन्हो रे भाई।।"[7] वास्तव में इसी साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर देखते-देखते परमतत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है। कबीर कहते हैं-

"कहै कबीर चरन तोहि बंदा, घर मैं घर दे परमानंदा।।"[8]

एक और स्थान पर कबीर कहते हैं कि इसी घट या शरीर के भीतर राम प्रकट हो गए हैं-

"अब घट प्रगट भाये राम राई,
सोधि सरीर कनक की नाई।।
कनक कसौटी जैसे कसि लेई सुनारा।
सोधि सरीर भयो तन सारा।।"[9]

इसी बात को संत नामदेव कुछ इस प्रकार से कहते हैं-

"आपन देउ देहुरा आपन, आप लगावै पूजा।
जलते तरंग तरंगते है जलु, कहन सुननकउ दूजा।।"[10]

संत पीपाजी कहते हैं-

"जो ब्रहमंडे सोई पिंडे, जो षोजै सो पावै।
पीपा प्रणवै परम तत्तु है, सतिगुरु होई लषावै।।"[11]

विपश्यना शरीर की संवेदनाओं को स्वानुभूति के साथ साक्षी भाव से देखना सिखाती है। इसी साक्षी भाव के सहारे व्यक्ति सुख और दु:ख, राग और द्वेष को भी साक्षी भाव से देखने का अभ्यस्त होता जाता है और मुक्ति के पथ पर अग्रसर होता है। स्वानुभूति का यह महत्त्व संत काव्यधारा में सर्वत्र दिखाई देता है। कबीर कहते हैं- 'तू कहता कागद

की लेखी मैं कहता आंखन की देखी।' संत रविदास कहते हैं- "बिन देषे उपजै नहीं आसा, जो दीसै सो होइ विनासा।"[12] गुरु नानकदेव कहते हैं-

"जिनि कीआ तिनि देखिआ, आपे जाणै सोई
किसनो कही मै नानका, जाघरि बरतै सभु कोई।"[13]

साक्षी भाव से देखते-देखते अनित्य बोध उत्पन्न होता है, जो विपश्यना की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस अनित्य बोध का अनुभव संत कवियों में हमें सर्वत्र दिखाई देता है।

कबीर कहते हैं- 'यहु ऐसा संसार है जैसा सेंबल फूल।' अनित्य बोध के साथ हमारे सारे संस्कार धीरे-धीरे क्षीण होते जाते हैं और दुखों से मुक्ति मिलती जाती है। बुद्ध जिन संस्कारों के घर को भंग करके भगवान बनते हैं –

"भग्गरागो... भग्गदोसो ... राग भग्न कर लिया, द्वेष भग्न कर लिया और इतना ही नहीं भग्गमोहो... मोह भी भग्न कर लिया और परिणामतः अनासवो अर्थात आस्रवों से मुक्त हो गए। (महानिद्देस५०, तिस्स्मेत्तेय्यसुत्तिदेस)"[14]

ठीक यही बात कबीर भी कहते हैं- 'हम घर जारा आपड़ा, लिया मुराडा हाथ', मशाल हाथ में लेकर अपने (संस्कारों के) घर को जला दिया। ज्ञान प्राप्ति के बाद बुद्ध ने संपूर्ण विश्व में करुणा एवं मैत्री का संदेश फैलाया– भवतु सब्ब मंगलम यही संदेश भी देते हैं। कबीर कहते हैं-

"जब थै आतम तत विचारा। तब निरबैर भया सबहित भै, काम क्रोध गहि डारा।।
व्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पंडित को जोगी।
राणा राव कवनसूं कहिये, कवन वैद को रोगी।।"[15]

शेख फरीद कहते हैं-

"आपु सवारहि मै मिलहि, मैं मिलिया सुषु होई।।
फरीदा जो तू मेरा होई रहहि, सबु जगु तेरा होई ।।"[16]

निष्कर्ष:

इस प्रकार हम देखते हैं कि विपश्यना न केवल आत्म साक्षात्कार और मुक्ति का मार्ग है, बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए मैत्री और करुणा का संदेश भी यह साधना देती है। इसी संदेश को पहले गौतम बुद्ध ने संपूर्ण संसार में फैलाया और उनके परवर्ती इन संत कवियों ने यही संदेश अपनी अनुभूति के माध्यम से सैकड़ो वर्षों तक जन-जन तक पहुँचाया। वर्तमान समय में जब भक्ति, साधना, धर्म अपने मूल अर्थों से कहीं ना कहीं भटकते हुए जान पड़ते हैं, तब संतों की यह वाणी आज के युग में पुनः और भी प्रासंगिक हो उठती है। अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र सैद्धांतिक व्याख्याओं से इतर यदि प्रायोगिक पक्ष पर भी विचार किया जाए तो शिक्षा के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन लाया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. गोयनका श्री सत्यनारायण /तिपिटक में सम्यक सम्बुद्ध , भाग-2/पृष्ठ- 136 /विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्म गिरी इगतपुरी -422403

2. गोयनका श्री सत्यनारायण /क्या बुद्ध नास्तिक थे?/पृष्ठ-90 /विपश्यना विशोधन विन्यास,धम्म गिरी इगतपुरी -422403
3. चतुर्वेदी परशुराम /संत काव्य(संग्रह)/प्रस्तावना/ किताब महल प्रकाशन इलाहाबाद 1958
4. वही, पृष्ठ 131
5. रिम्पोचे सोग्याल /जीवन और मरण की तिब्बती पुस्तक/पृष्ठ-66 /अनुवाद- रचना भोला यामिनी /फुल सर्किल पब्लिशिंग जे-40, जोरबाग लेन,नई दिल्ली -110003
6. गोयनका श्री सत्यनारायण /तिपिटक में सम्यक सम्बुद्ध ,भाग-2/पृष्ठ-122 /विपश्यना विशोधन विन्यास ,धम्म गिरी इगतपुरी -422403
7. चतुर्वेदी परशुराम /संत काव्य(संग्रह)/पृष्ठ 166/ किताब महल प्रकाशन इलाहाबाद 1958
8. वही, पृष्ठ 163
9. वही, पृष्ठ 179
10. वही, पृष्ठ 149
11. वही, पृष्ठ 210
12. वही, पृष्ठ 212
13. वही, पृष्ठ 252
14. गोयनका श्री सत्यनारायण /तिपिटक में सम्यक सम्बुद्ध , भाग-6/पृष्ठ- 747 /विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्म गिरी इगतपुरी -422403
15. चतुर्वेदी परशुराम /संत काव्य(संग्रह)/पृष्ठ 176/ किताब महल प्रकाशन इलाहाबाद 1958
16. वही, पृष्ठ 254